अध्याय 12

शिक्षक

मैं पहले ही बता चुका हूँ कि ईश्वरीय तत्व की एक धुँधली अवधारणा मेरी चेतना में एक मानवीय बोध के रूप में कैसे संघनित हुई। यह निश्चित भी है और नियत भी है, अनादि तत्व का सभी व्यक्तियों में प्रस्फुटन है। यह ईश्वर के अनेक प्रस्फुटनों में से एक हो सकता है जिसमें मनुष्य और उसका ब्रह्माण्ड समाया है। लेकिन जब तक हम मनुष्य बने रहते हैं, हम उसके किन्हीं दूसरे अकल्पनीय ब्रह्माण्डों में प्रकट होने को कभी नहीं जान सकते या उसकी कल्पना नहीं कर सकते। और इसीलिए, हमारे धर्मशास्त्र उसका जैसा भी चित्रण करें, वास्तव में अपने सामूहिक विकास में मनुष्य जिसकी ओर बढ़ते हैं; जिससे वे प्रेम में एकाकार होना चाहते हैं, जिसमें वे पिता, मित्र और प्रिय के अपने आदर्श ढूँढते हैं, वह मनुष्य का यही सनातन आदर्श है।

मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि अवचेतन रूप से मेरे मन में काम कर रहे दिव्य मानवता के इस विचार ने ही मुझे अपने साहित्यिक कर्म के एकान्त से बाहर निकलने, और संसार के व्यावहारिक क्रियाकलापों में भाग लेने को बाध्य किया। ध्यान में अनन्त का एकाकी आनन्द मुझे अधिक समय तक सन्तुष्ट नहीं रख पाया और मेरे अनजाने में ही जिनका उपयोग मैं अपनी मौन आराधना में करता रहा था उन पाठों की प्रेरणा खो गई।

मुझे विश्वास है, मैंने मोटे तौर पर अनुमान किया कि मुझे मनुष्य के जीवन में कुछ अनासक्त सेवा के माध्यम से आध्यात्मिक आत्मबोध की आवश्यकता थी। यह वह समय था, जब मैंने बंगाल में बच्चों के लिए एक शैक्षिक संस्था की स्थापना की। इसका एक विशिष्ट चरित्र है जो अभी भी अपनी पूर्णता पाने को संघर्षरत है; क्योंकि यह एक जीवन्त मन्दिर है जिसे मैंने अपने दिव्य तत्व के निमित्त बनाने का प्रयास किया। ऐसे किसी स्थान पर शिक्षा अनिवार्यतः मनुष्य के एक सम्पूर्ण जीवन की तैयारी बन जाती है, जो केवल ज्ञान और सेवा, आनन्द तथा रचनात्मक कार्य के माध्यम से वह जीवन जीते हुए ही सम्भव हो सकती है। यह आवश्यकता मेरी अपनी थी क्योंकि मैंने सपनों की दुनिया में अपने निर्वासन से सत्य की पूर्णता में लौटने की प्रेरणा का अनुभव किया।

मुझे प्राचीन भारत के एक अन्य कवि कालिदास का स्मरण हो आता है जिनकी कविता मेघदूत एक निर्वासित के सन्ताप के संगीत से गूँजती है। कवि भौतिक गृहमोह से सन्तप्त नहीं था, वह एक अधिक आधारभूत– आत्मा के गृहमोह– से सन्तप्त था। हम उनकी लगभग सभी रचनाओं में उन दिनों के राजाओं के महलों के दमनकारी वातावरण को महसूस करते हैं– विलासिता की वस्तुओं से भरे, आत्मलीनता की असंवेदनशीलता से युक्त, लेकिन साथ ही एक असाधारण सभ्यता पर आधारित परिष्कृत संस्कृति का वातावरण भी।

कवि राजदरबार में निर्वासित था– अनन्त की उपस्थिति से निर्वासित। वह जानता था कि यह निर्वासन केवल उसका नहीं है, बल्कि जिसमें वह जन्मा उस पूरे युग का है –ऐसा युग जिसने धन का संग्रह तो किया था लेकिन स्वस्ति-क्षेम (well-being) खो चुका था; वस्तुओं से भरे गोदाम तैयार किए थे और व्यापक सृष्टि की अपनी पृष्ठभूमि को खो बैठा था। उनके नाटकों और कविताओं में आग्रहपूर्वक उपस्थित परिपूर्णता की उनकी कामना का स्वरूप क्या था? यह स्वरूप था तपोवन की व्यवस्था– प्राचीन भारत के पितृसत्तात्मक समुदायों की वनों में निवास की व्यवस्था। संस्कृत साहित्य से परिचित लोग जानते हैं कि यह आदिम संस्कृति और मानस के लोगों का कोई उपनिवेश नहीं था। वे सत्य की खोज में लगे लोग थे, जिसके लिए वे शुचितापूर्ण (किन्तु अतिनैतिकतावादी नहीं) वातावरण में एक सहज जीवन जीते थे जिसमें आत्मदमन नहीं था। वे कभी ब्रह्मचर्य के पक्षधर नहीं थे और सांसारिक जीवन जीने वाले अन्य लोगों से निरन्तर सम्पर्क में रहते थे। उनके लक्ष्य और प्रयास का संक्षिप्त संकेत उपनिषद में इन पक्तियों में किया गया है :

ते सर्वागम सर्वतः प्राप्य धीर

युक्तात्मनाः सर्वमेवविशान्ति

(सर्वत्र विश्वव्यापी आत्मा की अनुभूति और उससे ऐक्य का अनुभव करके प्रशान्त चित्तवाले पूर्ण में प्रवेश करते हैं।)

यह नकारात्मक चरित्रवाला परित्याग का दर्शन नहीं, पूरी तरह सम्पूर्ण आत्मबोध था। समृद्ध उज्जयिनी नगर और विक्रमादित्य के गौरवपूर्ण युग में, सभी बाधक वस्तुओं और सर्वभक्षी आत्म से बुंरी तरह घिरे कालिदास का संतप्त मन जीवन की अपनी अन्तःप्रेरणा हेतु एक तपोवन की कल्पना पर मँडराया!

यह जाना-बूझा अनुकरण नहीं बल्कि एक सहज संयोग था कि आधुनिक भारत के एक कवि ने जब अपने भीतर में आध्यात्मिक निर्वासन का कष्ट महसूस किया तो उसकी भी ऐसी ही स्वप्न दृष्टि थी। कालिदास के काल में लोग स्पष्टतः तपोवन यानी वन में आवास के आदर्श में विश्वास करते थे, और इसमें सन्देह नहीं कि बाद के युग में भी प्रकृति के बीच रहनेवाले समुदाय थे, धीमे आत्मघात के मोह से ग्रस्त तपस्वियों के ही नहीं, उन प्रशान्त चित्त व्यक्तियों के भी जो अपने जीवन के आध्यात्मिक अर्थ का बोध पाना चाहते थे। इसीलिए, जब कालिदास ने तपोवन के गीत गाए तो उनकी कविताओं ने तत्काल अपने श्रोताओं के जीवित विश्वास के साथ ऐक्य पाया। लेकिन आज यह विचार वास्तविकता की निश्चित रूपरेखा को खोकर दन्तकथा की दूरवर्ती छायाभूमि में लौट गया है। किसी आधुनिक कविता में आया संस्कृत शब्द बस काव्यात्मक ही होगा, इसके अर्थ का आकलन मूल्य निर्धारण के एक साहित्यिक मानदण्ड द्वारा किया जाएगा। और बात यह भी है कि आज के युग में इसके प्राचीन स्वरूप की शुद्धता के साथ वन में निवास का उत्साह एक विलक्षण कालव्यतिक्रम (अपने युग से असंगत) होगा, और इसलिए, वास्तविकता में अनूदित हो पाने के लिए इसे जीवन की आधुनिक स्थितियों के अन्तर्गत पुनर्जन्म लेना होगा। यह भावना में वैसा ही होगा लेकिन तथ्यतः वैसा नहीं होगा। इसी विचार ने मूर्त शब्दों की भाषा में कविता के संयोजन को आधुनिक कवि की हार्दिक अभिलाषा बनाया।

लेकिन, मुझे कुछ विस्तार से इतिहास प्रस्तुत करना होगा। सभ्य मनुष्य अपने सामान्य जीवन के परिक्रमापथ से बहुत दूर आ गया है। उसने धीरे-धीरे कुछ ऐसे व्यवहार अपना और प्रबल बना लिए हैं जैसे छत्ते में बसने के निमित्त अनुकूलन के लिए मधुमक्खियाँ बना लेती हैं। हम प्रायः बिना किसी तर्कपूर्ण कारण के अपने परिवेश के विरुद्ध विद्रोह के भाव से भरे, ऊब और सांसारिक थकान से पीड़ित मनुष्यों को देखते हैं। सामाजिक क्रान्तियाँ सदा एक आत्मघाती हिंसा के साथ प्रारम्भ होती रही हैं जिसका कारण हमारे छत्ते की दीवारों के विन्यास से उत्पन्न होने वाली असन्तुष्टि है, यह एक ऐसा विशिष्ट घेरा है जो हमें हमारे जीने की कला में सन्तुलन प्रदान करने के लिए बहुत आवश्यक परिप्रेक्ष्य से वंचित करता है। यह सब एक संकेत है कि मनुष्य मधुमक्खी वाले साँचे में नहीं ढला और इसलिए, जब सामाजिक से कुछ ज्यादा होने की उसकी स्वतन्त्रता की उपेक्षा होती है, वह दुस्साहसी रूप से असामाजिक बन जाता है।

हमारी अत्यन्त जटिल आधुनिक अवस्था में यान्त्रिक शक्तियाँ ऐसी कुशलता से संगठित हैं कि सामग्रियाँ इतनी मात्रा में उत्पादित होती हैं जो मनुष्य की चुनने की क्षमता और अपनी प्रकृति और आवश्यकताओं के अनुरूप इन्हें सरल बनाकर सुमेलित करने की उसकी स्वांगीकरण की क्षमता से बहुत अधिक होती है।

उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में अन्धाधुन्ध बढ़नेवाली वनस्पतियों की तरह वस्तुओं की ऐसी असंयमी अपवृद्धि मनुष्य के लिए घेरा तैयार करती है। घोंसला सरल है, इसका पहले से आकाश से नाता रहा है; पिंजरा जटिल और महँगा है; यह जो कुछ इसके बाहर होता है उससे बहुत अधिक बहिष्कृत है। और मनुष्य अपना पिंजरा तैयार कर रहा है, तेजी से उस राक्षसी तत्व पर अपनी परजीविता विकसित कर रहा है जो उसे खुद को सभी ओर से ढक लेने देता है। वह सदा खुद को इसके मृत कोणीय आकार के अनुरूप ढालने में जुटा रहता है, खुद को इसकी सीमाओं में सीमित करता है, और बस उसका एक हिस्सा बनकर रह जाता है।

यह उन लोगों के सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रतीत हो सकता है जो यह मानते हैं कि वस्तुओं की कृत्रिम रूप से विकसित भूख से प्रेरित जीवन-निर्वाह का निरन्तर बना रहनेवाला तीव्र दबाव ही सभ्यता की अन्तहीन यात्रा का संचालन करनेवाली ऊर्जा है। निजी तौर पर, मैं नहीं मानता कि इस भूख और दबाव ने ज्ञात इतिहास की किसी महान सभ्यता को गौरव के शिखर तक पहुँचाया है।

मेरा जन्म जिस नगर में हुआ वह कभी ब्रिटिश भारत का महानगर रहा था। मेरे अपने पुरखे ईस्ट इंडिया कम्पनी के भाग्य के उतार-चढ़ाव के प्रारम्भिक ज्वार के प्रवाह में कलकत्ता आए। हमारे परिवार के लिए जीवन की अपारम्परिक संहिता तीन संस्कृतियों का संगम रही है- हिन्दू, इस्लामी और ब्रिटिश। मेरे दादा उस युग के थे जब धीरे-धीरे पोशाक, विनम्र सौजन्यशीलता और भरपूर अवकाश में कतर-ब्योन्त करके समय, औपचारिकता और निजी बनाव-ठनाव के सन्दर्भ में मितव्ययी विक्टोरियाई चलन से तालमेल बैठाया जा रहा था। यह दिखाता है कि मैं एक ऐसी दुनिया में आया जिसमें प्रगति की आधुनिक नागर प्रवृत्ति ने हमारे प्राचीन ग्रामीण समुदाय के जीवन की हरीतिमा पर अपने विजय-रथ का संचालन बस शुरू ही किया था। मेरे आस-पास रौन्दने की प्रक्रिया लगभग पूरी हो चुकी थी फिर भी भग्नावशेषों पर अतीत का विलाप अभी ठहरा था।

अकसर मैंने अपने सबसे बड़े भाई को हताश पश्चाताप की मार्मिकता से भरे स्वर में सहज दयालुता की पुरानी दुनिया की सुगन्ध से पूरित, सरल विश्वास और जीवन की उत्सवधर्मी कविता से भरे एक सत्कारशील समाज की बात करते सुना था। लेकिन यह सब गोधूलि बेला के क्षितिज के श्यामल-सुनहले धुन्धलके में पीछे छूटती छाया थी। मेरे बालपन का सर्वव्यापी तथ्य था– पश्चिमी व्यापारियों की एक कम्पनी द्वारा हाल में बनाया गया आधुनिक शहर और

असंख्य विसंगतियों से टकराती, हमारे जीवन में अपने अनभ्यस्त प्रवेश का आग्रह करती आधुनिक युग की भावना।

लेकिन मैं यह सोच कर सदा ही चकित होता रहा हूँ कि हालाँकि संसार का मेरा इकलौता अनुभव शहर की घिरी हुई कठोरता ही थी फिर भी मेरा चित्त निरन्तर किसी निर्वासित की घर की याद से ग्रस्त रहता था। लगता है जैसे अवचेतन में किसी आदिम आवास की स्मृति निरन्तर मेरे रक्त को आलोड़ित कर रही है, उस आवास की स्मृति जहाँ हमने अपने पुरखों के मानस में मूक चट्टानों, तेजी से बहते पानी और जंगल की अस्पष्ट फुसफुसाहटों को फिर से विन्यस्त और व्यक्त किया था। मुझमें छायाओं का पीछा करती कोई जीवित स्मृति धरती, जल, और वायु के असीम जादू में आदिम जीवन के साथ साझा जन्म से पूर्व के पालने और क्रीड़ांगण के लिए वेदना उत्पन्न करती लगती। स्तब्ध भारतीय दुपहरी की धधकती धूप में ऊँची उड़ती चील की तीखी टिटकारी एकाकी बालक को एक दूरस्थ मूक नातेदारी का संकेत भेजती। हमारे घर की बाहरी दीवार के पास इस धरती पर घुसपैठियों की किसी पुरानी सेना के युद्धबन्दियों से उगे नारियल के कुछ पेड़ मुझे उस चिरन्तन संगति के बारे में बताते जो वृक्षों के महान संगठन ने सदा ही मनुष्यों को दी है।

पीछे मुड़कर लड़कपन के उन पलों को याद करता हूँ जब मेरा चित्त प्रकाश की, आकाश की विपुल अनुभूति पर सधा तिरता, और चमकती घास में धूसर धरती के साथ सनसनाता प्रतीत होता था तो यह सोचे बिना नहीं रह पाता कि मेरी भारतीय वंशावली ने मेरे अस्तित्व की गहराई में सभी कुछ के साथ हमारी सुसंगति द्वारा परिपूर्णता प्राप्त करने की बात कहने वाले अपने दर्शन की विरासत छोड़ी है। मेरे विद्यालय की स्थापना के मूल में चेतना की मुक्ति की उस लालसा की स्मृति थी जो पीछे, मेरे जन्म के क्षितिज के परे, जाती प्रतीत होती है।

केवल स्वाधीनता के अर्थ में मुक्ति में कोई सत्व नहीं है, और इसलिए इसका कोई अर्थ भी नहीं है। सच्ची स्वतन्त्रता संसार से हमारे सामंजस्यतापूर्ण सम्बन्ध में निहित होती है, जिसे हम संसार को जानकर उसकी प्रतिक्रिया के तौर पर नहीं बल्कि सिर्फ इस संसार में मौजूद रहकर प्राप्त करते हैं। ज्ञान की वस्तुएँ हमसे, जो जानने वाले हैं, अनन्त दूरी बनाए रखती हैं क्योंकि ज्ञान ऐक्य नहीं होता। अतः मुक्ति की दुनिया वहाँ हमारी प्रतीक्षा करती है जहाँ हम सत्य तक पहुँचते हैं, अपनी इन्द्रियों के माध्यम से इसे महसूस करने अथवा अपनी बुद्धि से इसे जानकर नहीं, बल्कि निर्दोष सहानुभूति के ऐक्य से।

बच्चे अपनी ताजा अनुभूतियों के साथ सीधे संसार की अन्तरंगता में आते है। यह उन्हें मिला पहला महान उपहार है। उन्हें इसे अनावरित और सहज स्वरूप में स्वीकार करना चाहिए और इस निकटतम सम्पर्क की अपनी क्षमता को कभी गँवाना नहीं चाहिए। अपनी परिपूर्णता के लिए हमें अपने मर्म में आरण्यक और मानसिक रूप से सभ्य होना होगा; हमारे पास निसर्ग के साथ सहज और मनुष्य समाज के साथ मानवीय होने की प्रतिभा होनी चाहिए। शहरी जीवन के सभ्य अलगाव में बैठी मेरी निर्वासित आत्मा अपनी समझ के क्षितिज के विकास के लिए मेरे भीतर विलाप करती। मैं किसी कविता की बिखरी हुई पंक्ति की तरह था, हमेशा एक असमंजस की स्थिति में, जबकि जिस दूसरी पंक्ति के साथ इसकी तुक मिलती थी और जो इसे पूर्णता दे सकती थी, उसे कुहासे ने धुन्धला करके अबूझ दूरी पर पहुँचा दिया था। प्रसन्न रहने की सहज सुलभ क्षमता, जिसे मैं दूसरे बच्चों के साथ इस संसार में लाया था, नीरस मशीनी आदतों और सम्माननीयता की प्रचलित संहिता के चलते जीने की व्यवस्था के ईंट-गारे से रगड़ खाकर निरन्तर बिखर रही थी।

सामान्यतः जैसा होता ही है, मुझे विद्यालय भेज दिया गया। लेकिन अधिकांश दूसरे बच्चों से मेरी पीड़ा शायद असामान्य रूप से बड़ी थी। मुझमें जो असभ्य था वह संवेदनशील था; उसमें रंगों, संगीत और जीवन की गतिविधि को लेकर गहरी प्यास थी। हमारी शहर निर्मित शिक्षा ने इस जीवन्त तथ्य पर ध्यान नहीं दिया। उसने बिक्री योग्य परिणाम के ब्रांडेड गठ्ठरों से भरे अपने मालवाहक वाहन तैनात रखे थे। मनुष्यों में असभ्य और सभ्य का सापेक्षिक अनुपात हमारे भूमण्डल में जल और भूमि के अनुपात में होना चाहिए जिसमें जल का वर्चस्व है। लेकिन विद्यालय का अपना लक्ष्य सभ्य का निरन्तर उधारण है। द्रव तत्वों की ऐसी निकासी एक शुष्कता पैदा करती है जो सम्भव है कि शहरी स्थितियों में निन्दनीय न मानी जाए। लेकिन मेरा स्वभाव कभी भी उन स्थितियों का, पक्की पटरियों की असंवेदनशील भद्रता का अभ्यस्त नहीं हो पाया। मेरे भीतर के असभ्य की बहुत जल्दी जीत हुई और मैंने किशोरावस्था में कदम रखा ही था कि यह मुझे विद्यालय से दूर ले गया। मैंने खुद को अनभिज्ञता के एक निर्जन द्वीप पर छूटा पाया और मुझे अपनी शिक्षा के विकास के लिए बिल्कुल प्रारम्भ से पूरी तरह अपने सहज ज्ञान पर निर्भर रहना था।

मुझे याद है कि छुटपन में बड़े सौभाग्य से मुझे रॉबिन्सन क्रूसों का बांग्ला अनुवाद मिल गया था। मैं अभी भी मानता हूँ कि यह बालकों के लिए लिखी गई अब तक की सबसे बेहतर किताब है। छोटा था तो मुझमें अपने आप से दूर भागने और प्रकृति की हर चीज के साथ एक हो

जाने की एक लालसा थी। यह मनोदशा जो खास तौर पर भारतीय प्रतीत होती है, चेतना के विस्तार की पारम्परिक आकांक्षा का परिणाम है। मुझे मानना होगा कि ऐसी कोई आकांक्षा अपने स्वभाव में बहुत व्यक्तिपरक है; लेकिन यह उन भौगोलिक परिस्थितियों में अपरिहार्य है जिन्हें हमें सहना पड़ता है। केवल जैसे-तैसे अपना अस्तित्व बनाए रखने के अधिकार के लिए हर पल भारी कीमत चुकाते हम उष्णकटिबन्धीय आततायिता में जीते हैं। गर्मी, आर्द्रता, बड़े जीवधारियों द्वारा पोषित होते सूक्ष्म जीवधारियों की अकथनीय उर्वरा-शक्ति, चिड़चिड़ेपन के स्थाई दृश्य और अदृश्य स्रोत अपव्ययी परीक्षणों के लिए पूँजी की कम ही गुंजाइश छोड़ते हैं। ऊर्जा की अधिकता अपनी आत्मानुभूति के लिए बाधाएँ तलाशती है। इसीलिए प्रायः हम पश्चिमी साहित्य में प्रकृति के दुर्दान्त पक्ष को निरन्तर रेखांकित होते पाते हैं जिसमें पश्चिम के लोग, संघर्ष के लिए उसे चुनौती देने के शुद्ध मजे के लिए, कोई शत्रु खोजकर उल्लसित प्रतीत होते है। जिस कारण ने संसार पर उसकी विजय पूर्ण होने पर सिकन्दर से जीतने के लिए दूसरे संसार ढूँढने की इच्छा व्यक्त करवाई थी, वह पश्चिम के ऊर्जावान लोगों में, जब उनके पास हानिकर चीजों के विरुद्ध संघर्ष के अपने उदात्त अभियान में कुछ मोहलत होती है, अपने सब आवश्यक कामकाज छोड़कर दूसरे लोगों के सार्वजनिक मार्गों पर अपने कोट फैलाने और इन पर पाँव पड़ने पर हरजाने का दावा करने की आकांक्षा बनाता है। खुद को चोट पहुँचाने का रोमांचक जोखिम रचने के लिए वे उन जीवों को कष्ट पहुँचाने में अन्तहीन कठिनाइयों की राह जोहते हैं जो अनाक्रामक हैं, जैसे कि सुन्दर पक्षी जो दूर तक उड़ना जानते हैं, संकोचशील पशु जिनके पास दुर्गम क्षेत्रों में निवास की सुविधा है; और मैं इस सन्दर्भ में ऊँची नस्लों का जिक्र करने की अभद्रता से बच रहा हूँ।

जीवन की पूर्णता की राह में निरन्तर विरोधाभास आते हैं लेकिन यह इसकी प्रगति के लिए आवश्यक होते हैं। जलधारा को अपने प्रवाह की सुस्ती से उस मिट्टी का सतत प्रतिरोध बचाता है जिसमें से होकर उसे अपना रास्ता बनाना है। यही मिट्टी इसके तट रचती है। संघर्ष का भाव जीवन की विशिष्टता से जुड़ा है। किसी वाद्ययन्त्र के सुरों को इसलिए नहीं मिलाना होता कि इससे कठिनाई का सामना करने में कुशल लगन प्रकट होती है, बल्कि इसलिए कि यह संगीत की पूर्णता को साकार करने में मदद करता है। आइए हम प्रसन्न हों कि पश्चिम में जीवन के वाद्ययन्त्र के भिन्न-भिन्न तार इस महान तथ्य के कारण मिलाए जा रहे हैं कि पश्चिम बाधाओं के साथ संघर्ष में विजयी आनन्द पाता है। ब्रह्माण्ड के मर्म में स्थित सृजन का भाव, अपने ही लिए, इस बात की अनुमति नहीं देगा कि बाधाएँ पूरी तरह हटा दी जाएँ। संघर्ष की भावना महान है तो केवल इसलिए कि पूर्णता के उस आदर्श में जिसे अपना बनाने

के लिए हमें इसे अपने प्रयत्नों द्वारा प्राप्त करना है, सकारात्मक सत्य निहित है। लेकिन इसका अर्थ शारीरिक बलिष्ठता अथवा भुक्खड़ लोभ की संवेदनहीन बर्बरता दिखाने पर पारितोषिक की प्राप्ति नहीं है।

रॉबिन्सन क्रूसो में, प्रकृति से ऐक्य का आनन्द एक ऐसी साहसिक कथा में अभिव्यक्ति पाता है जिसमें एक एकाकी मनुष्य निर्जन प्रकृति के समक्ष है, उसे मनाता, उससे सहयोग करता, उसके रहस्यों का सन्धान करता, उसकी मदद पाने को अपनी सभी क्षमताओं का उपयोग करता।

यह पश्चिम का वीरतापूर्ण प्रणय-अभियान है, प्रकृति को सक्रिय रूप से मनाना। मुझे जवानी में एक बार यूरोप में ब्रिंड्सी से कैले तक की रेलयात्रा में हर कहीं अपने सुसभ्य प्रेमी, पश्चिमी मानवता के युगों से चले आ रहे अवधान के चलते स्वास्थ्य और समृद्धि की आभा से पुष्पित इस महाद्वीप के अक्षत सौन्दर्य का दर्शन होने पर निरन्तर बनी रही गहरे आनन्द और अचरज की भावना याद है। इस प्रेमी ने उसे पा लिया, उसे अपना बनाया और उसकी मूल अक्षय उदारता के बन्ध खोल दिए। और मैंने सायास कामना की कि सर्वव्यापी आत्म के जिस अन्तदर्शनात्मक स्वरूप का अनुभव पौर्वात्य भक्त अपने चित्त के एकान्त में करता है, वह सेवा के रूप में, क्षेम और सौदर्य की समृद्धि को उसके संकोची झुटपुटे से प्रकाश की ओर लाने में इच्छाशक्ति के उपयोग की इसकी बाहरी अभिव्यक्ति से मिल जाए।

मुझे वह सुबह याद है जब बंगाल के एक गाँव में मेरी मेज के फूलदान से फेंके ही जा रहे बासी फूलों को एक भिखारी स्त्री ने अपने साड़ी के आँचल में भर लिया था और परम आनन्द के कोमल भाव से ''हे मेरे हृदय के प्यारे!'' पुकारते उनमें अपना चेहरा धँसा दिया था। उसकी आँखें आसानी से फूल की संरचना के बाहरी स्वरूप के आवरण को भेदकर इन फूलों में निहित अनन्त लोक में जा पहुँची जहाँ उसे अपने प्रिय, महान सर्वभौम पुरुष का आत्मीय स्पर्श मिला। लेकिन फिर भी उसमें आराधना की उस ऊर्जा का, प्रत्यक्ष दैवीय सेवा के उस पश्चिमी स्वरूप– मनुष्य की सेवा –का अभाव था जो उसके फूलों को बाहर लाने और उजाड़ धूलि पर सौंदर्य का आधिपत्य फैलाने में पृथ्वी की मदद करती है। मैं इस सोच को नकारता हूँ कि पूरब और पश्चिम की जुड़वा चेतनाएँ– मैरी और मार्था –सत्य की अनुभूति की प्राप्ति के लिए कभी एकाकार नहीं हो सकतीं। और पूरब में हमारी भौतिक गरीबी और समय की विपरीतता के रहते भी, मैं धैर्यपूर्वक इस भेंट की प्रतीक्षा करता हूँ।

जब मैं किसी ऐसे संस्थान के बारे में विचार करता हूँ जहाँ प्रकृति और मनुष्य के पूर्ण मिलन का पहला महान पाठ केवल प्रेम के माध्यम से ही नहीं बल्कि सक्रिय संवाद और मेधावी तरीकों से, निर्बाध पाया जा सकता है तो मुझे रॉबिन्सन क्रूसो का महाद्वीप याद आता है। हमें याद रखना होगा कि प्रेम और सक्रियता केवल माध्यम हैं जिनसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है; क्योंकि ज्ञान का उद्देश्य पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं बल्कि विवेक है। किसी भी संस्था का प्राथमिक प्रयोजन सभी तरह की आपात स्थितियों के लिए केवल किसी की भुजाओं या पैरों और मस्तिष्क को पर्याप्त तैयारी की शिक्षा देना नहीं बल्कि जीवन और संसार के बीच सुरीले संवाद से पूरी तरह सुमेलित रहने का, उनके सामंजस्य में सन्तुलन यानी विवेक पाने का, होना चाहिए। ऐसे किसी स्थान पर बच्चों के लिए पहला पाठ आशु रचना होगा क्योंकि निरन्तर तैयार जानकारियाँ थोपे जाने की प्रक्रिया यहाँ से निर्वासित है। संस्था का प्राथमिक प्रयोजन उपलब्धि के अचरज द्वारा अपनी क्षमताओं के अन्वेषण के अवसर प्रदान करना है।

मैं स्पष्ट कर दूँ कि इसका अर्थ सरल जीवन का पाठ नहीं बल्कि रचनात्मक जीवन का प्रशिक्षण है। क्योंकि जीवन जटिल हो सकता है लेकिन फिर भी यदि इसके केन्द्र में एक जीवन्त व्यक्तित्व है तो इसमें फिर भी सृजन का संयोग होगा; वह पूरी शालीनता से अपना भार वहन करेगा, और भीड़ बढ़ाने वाली एक अतिरिक्त संख्या मात्र नहीं होगा।

काश कि मैं कह पाता कि मैंने अपने स्वप्न को अपने स्कूल में पूरी तरह साकार कर लिया। मैंने इस दिशा में केवल पहला परिचय कराया था और बच्चों को प्रकृति से प्रेम करने में सक्षम होकर उसमें अपनी मुक्ति तलाशने का एक अवसर दिया था। क्योंकि प्रेम ही मुक्ति है; यह हमें अस्तित्व की वह पूर्णता देता है जो हमें एकदम तुच्छ वस्तुओं का दाम हमारी आत्मा से चुकाने से बचा लेती है। प्रेम अपने अभिप्राय से इस संसार को दीप्त करता है और जीवन को अनुभव करवाता है कि उसके पास हर कहीं वह 'पर्याप्त' है जो सचमुच उसका 'भोज' है। मैं उन व्यक्तियों को जानता हूँ जो गरीबी के आध्यात्मिक महत्त्व का महिमामण्डन करते हुए सहज जीवन जीने का उपदेश देते हैं। जब गरीबी केवल निषेध हो तो मैं गरीबी में किसी विशिष्ट मूल्य की कल्पना को नकारता हूँ। जब मानस में सत्य की आन्तरिक पुकार का उत्तर देने में सक्षम होने की संवेदनशीलता होती है, तभी यह सहज रूप से वस्तुओं के काल्पनिक मूल्य के लोभ से दूर रहने का अभ्यस्त होता है। असंवेदनशीलता हमसे आनन्द पाने की हमारी सहज शक्ति छीन लेती है और हमें फर्निचर और दामी चीजों के मूर्खतापूर्ण बोझ पर दम्भी अभिमान के दुर्दैव तक पहुँचा देती है। लेकिन विलासिता की असंवेदनशीलता के विरुद्ध वैराग्य

की असंवेदनशीलता को खड़ा करना बस एक अमंगल की सहायता से दूसरे अमंगल से संघर्ष करना है, जंगल के अविवेकी दानव के स्थान पर मरुस्थल के निर्मम दैत्य का आवाहन करना है।

मैंने साहित्य, उत्सवी आयोजनों तथा धार्मिक शिक्षा की सहायता से अपने विद्यालय के बच्चों में प्रकृति के प्रति उनकी भावनाओं में ताजगी, उनके मानवीय परिवेश के साथ उनके सम्बन्ध में मन की संवेदनशीलता, विकसित करने का पूरा प्रयास किया। धार्मिक शिक्षा हमें आत्मा के द्वारा संसार की उपस्थिति के अधिक निकट आने का आदेश देती है ताकि आत्मा की अतुलनीय प्राप्ति हो, यह किसी वाद्ययन्त्र के संगीत को व्यक्त करके उसे वास्तव में पा लेने जैसा है।